ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL**04292**
RNI REG. NO. UPBIL/**2014/66218** **PP. No.- 227-231**
I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- III, Issues-41, YEAR- July-Sept. 2026

गुप्तकाल में उपयोग होने वाले प्रसाधन

डॉ0 मनिका टण्डन
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, इतिहास विभाग (बी.ए., एलएल.बी.) आगरा कॉलेज, आगरा (उ0प्र0) भारत

Received-05.07.2026, Revised-13.07.2026, Accepted-20.08.2026, **E-mail:kapoordigimaharaja@gmail.com**

सारांशः ***प्रसाधन का मुख्य अभिप्राय सुवेश एवं सुसंस्कृत साज–सज्जा से है। मनुष्य को आकर्षक और सुन्दर बनाने की सभी साधन–शैलियाँ प्रसाधन शब्द के अन्तर्गत आ जाती हैं। प्रसाधन शरीर की सौन्दर्य वृद्धि के लिए किया जाता रहा है। शरीर का सौन्दर्य कुछ तो स्वाभाविक होता है और कुछ प्रयत्न–सिद्ध होता है। आदि काल से ही मानवों में प्रसाधन की प्रवृत्ति पाई जाती रही है। एक संन्यासी जिसे सांसारिक विषयों से कोई सरोकार नहीं होता और जिसकी दैनिक आवश्यकताएँ बहुत ही सीमित होती हैं, वह भी अपने शरीर की ओर से निरपेक्ष नहीं रहता है। वह नित्यप्रति स्नान करता है, अपने जटा–जूट को स्वच्छ करता है और उनको एक क्रम–विशेष से बाँधता है। नागरिक जीवन से दूर वनों में रहने वाली कन्याएँ वनों में उपलब्ध वस्तुओं से अपने शरीर को सजाती थीं। कालिदास के काव्य और नाटक की पार्वती तथा शकुन्तला का प्रसाधन वनलता और वनपल्लवों से ही होता था। शकुन्तला ने वृक्ष का वल्कल पहिने ही सम्राट दुष्यन्त के चित्त को आकृष्ट कर लिया था।[1]*

वस्तुतः प्रसाधन समस्त मानव को सदैव प्रिय रहा है। प्रसाधन–प्रियता का सम्बन्ध मन–आत्मा के साथ रहने से यह शिक्षित–अशिक्षित स्त्री–पुरुष में समानरूप से पाया जाता रहा है। इसलिए आज की भाँति प्रागैतिहासिक काल में तथा उसके पश्चात् युग–युगान्तर में भी इसके प्रमाण मिलते हैं, जैसा कि प्राचीन उत्खनन में सुरमा, सुरमेदानी, सलाई आदि मिलने से सुस्पष्ट है। वस्तुतः प्रसाधन कार्य में मनुष्य की रुचि जन्मजात है। जिस प्रकार काम नित्य है (कामस्य नित्यत्वाच्च)[2] उसी प्रकार प्रसाधन प्रवृत्ति भी नित्य–शाश्वत रही है।

कुंजीभूत शब्द– सुसंस्कृत साज–सज्जा,जटा–जूट, प्रसाधन, प्रागैतिहासिक काल, आकर्षक,सुन्दर,प्रयत्न–सिद्ध, आदि काल, नित्य–शाश्वत।

वात्स्यायन कामसूत्र में एक नागरिक और उसकी पत्नी के प्रसाधन का चित्र अंकित किया गया है। नागरिक प्रातःकाल उठकर नित्यकर्म के पश्चात् दातून से मुख साफ करता था। फिर शरीर पर उचित रूप में (मात्रया) चन्दन आदि का लेप करता अथवा सुगन्धित–मधुर गन्धवाले पदार्थ का लेप लगाता। तत्पश्चात् अपने वस्त्रों पर अगरु का धूप देकर माला धारण करता। वह इत्र आदि अन्यान्य सुगन्धियों का भी प्रयोग करता था और उसके पास सुगन्ध–मंजूषा रहती थी। आँख में अंजन करता था, यह अंजन भिन्न–भिन्न वस्तुओं से तैयार होता था। ओठों पर आलक्तक लगाकर इस पर मोम रगड़ता था, जिससे उसका रंग पक्का हो जाए। फिर दर्पण में चेहरा देखता था। मुख को सुगन्धित करने के लिए पान खाकर वह काम पर जाता था।[3] वह अपने बाल बनवाता था और प्रतिदिन स्नान करता था, शरीर को साफ करने के लिए फेनक (साबुन) का उपयोग करता था।[4]

उत्सव और पर्व आदि के अवसरों पर जब उसकी स्त्री सम्मिलित होती थी तो वह भी सुगन्ध लगाकर आभूषणों को उचित मात्रा में धारण करती थी। इस समय वह श्वेत फूलों को धारण करती थी। जब वह अपने स्वामी के पास जाती थी तब अपने प्रसाधन पर बहुत ध्यान देती थी।[5]

ऐसा नहीं था कि सम्पन्न घरों की स्त्रियाँ ही अपने को आकर्षक बनाने के लिए प्रसाधन सामग्री का उपयोग करती थीं, अपितु निचली श्रेणी की स्त्रियाँ, जैसे कि दासियाँ आदि, भी अपने को सजाती थीं– (प्रियालोकफलो हि वेशः)।[6] गुप्तकाल में स्त्रियों तथा पुरुषों के विलासमय जीवन, उनकी प्रसाधन–प्रियता, केश–विन्यास आदि की रुचि तथा दैनिक जीवन के विषय में कालिदास ने सजीव चित्र उपस्थित किया है। इसमें धनी और निर्धन दोनों का चित्रण है।

अलकापुरी की कुलवधुएँ हाथों में आभूषण पहनती थीं, अपनी चोटियों में नये खिले हुए कुन्द के फूल गूँथती थीं, अपने मुँह को लोध के फूलों का पराग मलकर गोरा करती थीं, अपने जूड़े में कुरबक के फूल खोंसती थीं, अपने कानों पर सिरिस के फूल रखती थीं और वर्षा में फूल उठने वाले कदम्ब के फूलों से अपनी माँग सँवारा करती थीं।[7]

हिमालय की राजधानी औषधिप्रस्थ नगर में महादेव जी की बारात के आगमन पर उनके दर्शन के लिए चाव से भरी हुई नगर की सब सुन्दरियाँ अपना–अपना सब काम–काज छोड़कर अपने भवनों की छतों पर आ खड़ी हुईं। एक स्त्री ज्यों ही खिड़की की ओर हड़बड़ी में भागी कि उसके जूड़े में बँधी हुई फूल की माला खुल गई और वह उसे अपने हाथ से पकड़े हुए ही चल दी, उसे बाँधने की सुध न रही।[8] एक स्त्री अपने पैर में महावर लगवा रही थी कि उसे अधूरा छोड़कर ही वह झटपट खिड़की के पास तक अपने महावर लगे पैरों की छाप बनाती हुई दौड़ गई।[9] एक स्त्री अपनी दाई आँख में काजल लगा चुकी थी, पर बाई आँख में बिना लगाए हाथ में सलाई लिए हुए ही खिड़की की ओर लपकी।[10] इन सभी उल्लेखों से ज्ञात होता है कि प्रसाधन–प्रियता धनी एवं निर्धन दोनों वर्गों में समानरूप से विद्यमान थी।

मुखशुद्धि–दन्तधावन– गुप्तयुग में मण्डन की शालीनता को विशिष्ट स्थान प्राप्त था। शरीर की स्वच्छता और उसे दर्शनीय बनाने के लिए सर्वाधिक उपक्रम गुप्तकाल में ही दृष्टिगोचर होते हैं। स्नान तो अनिवार्य नित्यकर्म सदा से ही होता आया था, परन्तु उसके पूर्व और पश्चात् अनुलेपन, चन्दनादि सुगन्ध–द्रव्यों का उपयोग युग की विशेष देन थे। सौन्दर्य–साधन नित्य की प्रक्रिया थी, जिसका आरम्भ प्रतिदिन उठने के साथ ही होता था। मुखशुद्धि शरीरशोधन की पहली प्रक्रिया थी, जिसका आरम्भ दन्तधावन से होता था। वराहमिहिर की 'बृहत्संहिता' में दन्तधावन के लिए प्रयुक्त विविध वृक्षों की दातुनों के गुणों तथा दोषों का विवेचन हुआ है। नागरिक की दिनचर्या का वर्णन करते हुए वात्स्यायन ने बताया है कि नागरिक सूर्योदय से पूर्व उठकर, निवृत्त होकर सबसे पहले दातून से दाँत साफ करता था,[11]किन्तु उसकी दातुन पेड़ से तोड़ी हुइ सामान्य नहीं होती थी, अपितु औषधियों तथा सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित होती थी।

अभ्यंग एवं उत्साहन– स्नान से पूर्व शरीर पर तैल की मालिश की जाती थी, जिसे अभ्यंग कहते थे। इससे शरीर की त्वचा दृढ़ एवं सुन्दर बनती थी। शरीर पर तैल का अभ्यंग आवश्यक माना जाता था। अंगमर्दन की प्रक्रिया के लिए इंगुदी के फल, मैनसिल और हरिताल से एक प्रकार का सुगन्धित तेल तैयार किया जाता था। अभ्यंग से मनुष्य में बल आता था तथा त्वचा सुन्दर होती थी।[12] व्यायाम के पश्चात् भी अंगमर्दन कराना आवश्यक समझा जाता था। सिर में तेल लगाया जाता था। विभिन्न अंगों में विविध प्रकार के तेलों की मालिश होती थी। अंगमर्दन के लिए तेल खाए हुए चर्म का आसन प्रयुक्त होता था। इसी पर नागरिक बैठ जाता था।

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- III, Issues-41, YEAR- July-Sept. 2026

अंगमर्दन में हथेली और पैर के तलवों का प्रयोग होता था। अंगों को चटकाया जाता था, मोड़ा जाता था और मींजा जाता था। कुछ लोग इस काम में विशेषरूप से निष्णात होते थे, जो अंगमर्दन करते समय थकते नहीं थे। वात्स्यायन ने उबटन–मालिश–केश–मर्दन कलाकृ'उत्सादने संवाहने केशमर्दने च कौशलम्'– की गणना 64 कलाओं के अन्तर्गत की है।[13]

अभ्यंग के परिणामस्वरूप शरीर पर लगे तेल को उतारने के लिए सुगन्धित द्रव्यों से बने उबटन का प्रयोग किया जाता था। पार्वती के लिए लोध का उबटन लगाया गया था।[14] उबटन को अनुलेप, अंगराग आदि कहते थे। इनको उशीर (खस) आदि घासों या चन्दन से बनाते थे। उबटनों में कालेयक, कालागुरु, हरिचन्दन आदि का भी उपयोग होता था। स्नान से पूर्व लोग खस अथवा चन्दन से बने 'अनुलेप' और 'अंगराग' का तन पर उबटन लगाते थे। कालेयक, कालागुरु और हरिचन्दन से एक तीसरे प्रकार का उबटन बनता था। इंगुदी के फल, मैनसिल और हरिताल से भी एक प्रकार का सुगन्धित तेल तैयार किया जाता था। आश्रम वाले इंगुदी का तेल लगाते थे।

स्नान– स्नान प्रसाधन का एक महत्त्वपूर्ण अंग था। भारतीय जलवायु ही प्रायः मनुष्य को स्नान करने के लिए बाध्य करती रही है। अतः यहाँ स्नान प्रतिदिन करने की प्रथा सदैव रही है। ग्रीष्म ऋतु में स्नान दो बार भी किया जाता था। नागरिक स्नान के लिए नदियों या जलाशयों तक जा सकते थे, पर साधारणतः उनका स्नान घर पर ही होता था।[15]

वात्स्यायन के अनुसार स्नान नागरिक का दैनिक कर्म होता था।[16] प्रति तीसरे दिन वह झाग देने वाले किसी द्रव्य (फेनक) से अपने शरीर को शुद्ध करता था।[17] स्नानागार में स्नान की चौकी होती थी, जो साधारणतः संगमरमर की बनी होती थी और बहुमूल्य धातुओं के पात्र में सुगन्धित जल रखा हुआ रहता था। उस समय परिचारक या परिचारिका उसके केशों में सुगन्धित आमलक (आँवले) का पिसा हुआ कल्क धीरे–धीरे मलती थी और शरीर में सुवासित तेल मर्दन करती थी। स्नान–गृह में एक जल की द्रोणी (टब) होती थी, जिसमें थोड़ी देर बैठने के पश्चात् स्नान की चौकी पर बैठते थे। उनके सिर पर सुगन्धित वारिधारा पड़ने लगती थी और तृप्ति के साथ उनका स्नान समाप्त होता था।[18]

अजन्ता में कुमार गौतम के स्नान का एक मनोहर दृश्य चित्रित किया गया है। इसमें कुमार एक स्फटिक की चौकी पर बैठे हैं। दो परिचारक सिर पर सफेद गमछा बाँधे पीछे से पानी डाल रहे हैं। चौकी के पास ही एक परिचारिका थाली में कुछ लिये खड़ी है। स्नानागार के बगल वाले हिस्से में एक भृत्य सुगन्धित जल से भरा हुआ कलश ले आ रहा हैय कलश के भार से उसकी गर्दन झुक गई है। तीन परिचारिकाएँ और हैं। एक के सिर पर से कुछ द्रव्य एक उतार रही है और तीसरी कोई प्रसाधन सामग्री लेकर स्नानागार की ओर आ रही है।[19] इसी प्रकार 17वीं गुफा के एक चित्र में स्नान के पश्चात् रानी के प्रसाधन का बड़ा ही अभिराम चित्र है। इसमें रानी स्वयं मुकुर लेकर प्रसाधन–नैपुण्य को देख रही है।[20] यह चित्र अजन्ता के उत्तम कलात्मक चित्रों में से एक है। इस प्रकार स्नान और स्नानोत्तर प्रसाधन के और भी अनेकानेक चित्र उपलब्ध हुए हैं। कालिदास के अनुसार ग्रीष्म ऋतु में लोग जल–यन्त्र–मन्दिर (कदाचित् शावर) में स्नान करते थे।[21]

केश–विन्यास– प्रसाधनों में केश–विन्यास को प्रमुख स्थान प्राप्त था। स्त्रियों के प्रसाधन का यह एक अभिन्न अंग था। वे अपने केशों को अधिक सुन्दर ढंग से सँवारती थीं। बालों के समूह को स्पष्ट करने के लिए पाश, पक्ष, हस्त, जाल, जालक, भार शब्द आते हैं।[22] सुन्दर केशवाली नायिका को कालिदास ने सुकेशी कहा है।[23] कुटिल केशोंवाली नायिका को अरालकेशी कहा है।[24] प्राचीन काल में केश–विन्यास के दो ही प्रकार सामान्यरूप से ज्ञात थे– सुन्दर केश और अराल केश। सुन्दर केश घुँघराले न होकर लम्बे होते थे और अराल केश लम्बे न होकर घुँघराले होते थे।

स्त्रियाँ अपने बालों को घुँघराले बनाने के लिए भाँति–भाँति के लेप और पिष्ट का प्रयोग करती थीं। स्त्री–पुरुष दोनों नहा–धोकर केशों को सँवारने से पूर्व कालागुरु,[25] लोध और धूप के धुएँ से धूमित–सुखाकर सुवासित कर लेते थे।[26] स्त्रियाँ स्नान के द्वारा अपने केशों को स्वच्छ करने[27] के पश्चात् उन्हें काढ़कर एक सुन्दर चोटी गूँथ देती थीं। चोटी को वेणी कहा जाता था। वेणी प्रायः एक ही हुआ करती थी। कालिदास ने शकुन्तला को एक ही वेणी धारण किए हुए चित्रित किया है।[28] इससे यह भी अनुमान होता है कि उन दिनों कुछ स्त्रियों में दो वेणियों का भी प्रचार रहा होगा। इनके अतिरिक्त अलक,[29] लम्बालक,[30] वर्षभार,[31] चूड़ापाश, औद्रपटल, मधुपटल, मौलि आदि अनेक प्रकार के केश–विन्यासों का उल्लेख समकालीन साहित्य में मिलता है और उनके रूप मृण्मूर्तियों में देखे जा सकते हैं।

स्त्री–पुरुष दोनों ही लम्बे केश रखते थे और दोनों को ही अपने केशों को घुँघराले बनाने का शौक था। लम्बे केश वाली स्त्रियों के बाल प्रायः बिना वेणी के कमर तक लटकते रहते थे।[32] कभी–कभी खुले केशों को समेटकर माथे पर जूड़ा बाँधा जाता था। बाण ने इसी को 'ललाटजूटक' कहा है।[33] बालकों के केश दोनों ओर छल्लानुमा लटका करते थे। उनको काकपक्ष कहते थे, अर्थात् केश मुख के दोनों ओर काकों के पंखों की तरह प्रसारित होते थे। कालिदास ने रघु और राम के काकपक्ष का वर्णन किया है।[34] कार्तिकेय की गुप्तकालीन मूर्तियों में भी प्रायः काकपक्ष का अंकन मिलता है।[35] पुरुषों के भी कुन्तल केश दोनों ओर कन्धों तक लटकते रहते थे। अभिजात और धनिक वर्ग की स्त्रियों के केश दासियाँ प्रसाधित किया करती थीं, जो सेविकाओं के रूप में नियुक्त की जाती थीं। ऐसी सेविकाओं को 'केशकारिणी' कहा जाता था।

साहित्य के अतिरिक्त पुरातत्त्व सम्बन्धी साक्ष्य भी केश–विन्यास पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं। गुप्तकालीन राजा भी अपने केशों को विभिन्न प्रकार से प्रसाधित और सुसज्जित कराते थे। गुप्त स्वर्ण मुद्राओं में प्रदर्शित कई आकृतियों के केश ग्रन्थित मिलते हैं। 'अप्रतिघ प्रकार' की मुद्राओं में कुमारगुप्त प्रथम के सिर पर केशों का जूड़ा प्रदर्शित है।[36] सभी अनावृत सिरों पर बड़े सुन्दर एवं भव्य तथा ग्रीवा तक झूलने वाले केश हैं। कुमारगुप्त प्रथम के तथा स्कन्दगुप्त के केश कुछ घुँघराले लगते हैं। अतः प्रतीत होता है कि गुप्तकालीन समाज में लम्बे केशों को रखने की प्रथा पुरुषों में प्रचलित थी। गुप्त मुद्राओं पर कई आकृतियों के केश ग्रन्थित हैं। कुमारगुप्त प्रथम के 'गजारोही सिंह निहन्ता प्रकार'[37] के पृष्ठ भाग में लक्ष्मी, 'गैंडा मारने वाले प्रकार'[38] के पृष्ठ भाग में गंगा, 'अप्रतिघ प्रकार'[39] के पुरोभाग में रानी के केश इस प्रकार ग्रन्थित हैं कि जूड़े का आभास देते हैं।

गुप्तकालीन मूर्तियों और चित्रों में स्त्रियों के विविध केश–विन्यास का अभिराम चित्रण हुआ है। इस समय की मूर्तियों और चित्रों में उनके केश–विन्यास के अनेकानेक रूप मिलते हैं। अजन्ता, बाघ आदि गुफाओं की दीवारों पर चित्रित नारी के विविध केश–विन्यास उस समय की सौन्दर्यप्रियता को व्यक्त करते हैं।

सुगन्धित द्रव– धनिक नागरिक सुगन्धित द्रवों का प्रयोग करते थे। इनके द्वारा वस्त्रों को सुवासित किया जाता था। अनुलेप का प्रयोग भी सुगन्धित द्रव के रूप में किया जाता था। चन्दन के अनुलेप को व्यवहार में लाया जाता था, क्योंकि चन्दन सुरभियुक्त

हुआ करता है। उज्जयिनी की वेश्या वसन्तसेना के घर में चन्दन को घिसकर उसका सुगन्धित अनुलेप तैयार किया जा रहा था।[40] स्त्रियाँ अपने अवयवों को चन्दन के अनुलेप से चर्चित करती थीं।[41] अन्य अनुलेपों में कालीयक का अनुलेप तथा कालागुरु का अनुलेप उल्लेखनीय है। विशेषतः स्त्रियाँ कालीयक के अनुलेप से शरीर के विभिन्न भागों को चर्चित करती थीं।[42] कभी–कभी एक ही समय में कई अनुलेप चढ़ाए जाते थे, उदाहरणार्थ चन्दन तथा कालागुरु के अनुलेप।[43] स्त्रियाँ कभी–कभी कालागुरु के धुएँ से केशपाश तथा वस्त्रों को सुगन्धित करती थीं तथा इस रूप में प्रियतम से मिलने जाती थीं।[44]

अंगराग– अंगराग स्त्रीसमाज के शृंगार का एक प्रिय प्रसाधन था। यह प्रथा स्त्री–समाज में विशेष रूप से व्यापक थी। अंगराग के लगाने की क्रिया को रञ्जन कहा जाता था। अंगराग पाँच स्थानों पर चढ़ाया जाता था–(1) नेत्र, (2) अधर, (3) दाँत, (4) पयोधर तथा (5) चरण। भरतमुनि ने नेत्र, अधर तथा दाँत पर अंगराग लगाने की क्रिया को क्रमशः नेत्ररञ्जन, अधररञ्जन तथा दन्तरञ्जन कहा है।[45] ऋतुसंहार में स्तनों पर चढ़ाए गए अंगराग को स्तनांगराग कहा गया है।[46] इस ग्रन्थ में चरणों के ऊपर भी अंगराग के चढ़ाने का उल्लेख किया गया है।[47] दो प्रकार के अंगराग विशेष रूप से प्रचलित थे–(1) कुंकुमराग तथा (2) लाक्षारसराग। कालिदास ने स्तनों के ऊपर कुंकुमराग लगाने का उल्लेख कई स्थलों पर किया है।[48] ऋतुसंहार से विदित होता है कि कुंकुमराग गौरवर्ण का होता था।[49] लाक्षारस का अंगराग प्रायः अधर एवं चरणों पर लगाया जाता था। यह लाल होता था।[50] लाक्षारसराग को अलक्तक राग भी कहा जाता था। कुमारसम्भव में कहा गया है कि पार्वती के ओठ अलक्तक से लाल थे।[51]

अपने गालों पर स्त्रियाँ लता की भाँति सुकुमार टहनियाँ और पत्तियाँ बनाती थीं तथा छोटी–छोटी चन्दन आदि के बिन्दुओं से भी रेखाएँ आदि बनाती थीं। इनके पत्रलेखन, पत्ररचना, विशेषक, पत्रविशेषक, भक्ति आदि अनेक नाम थे। इनके लिए लेप तैयार करने में शुक्लागुरु, कालागुरु, गोरोचन, चन्दन, कुंकुम आदि का प्रयोग होता था। हरिताल और मेनसिल से बने लेप से नर–नारी माथे पर तिलक भी लगाते थे। स्त्रियाँ तिलक के लिए अंजन अथवा काजल का भी प्रयोग करती थीं, जो ललाट की शुभ्र भूमि पर बिन्दी के रूप में चमक उठता था। नेत्रों में अंजन शलाकाश (सलाई) द्वारा लगाया जाता था।

ऋतु के अनुकूल प्रसाधन– कालिदास ने ऋतु के अनुसार श्रृंगार और प्रसाधन का विशद वर्णन किया है जिससे प्रतीत होता है कि अलग–अलग ऋतुओं में स्त्रियाँ अलग–अलग ढंग से अपने को संवारती थीं–

ग्रीष्म–ऋतु में स्त्रियाँ शरीर पर चन्दन का लेप करती थीं।[52] वस्तुतः चन्दन का लेप शिशिर–ऋतु को छोड़कर वर्ष भर होता था। चन्दन को विभिन्न ऋतुओं के अनुकूल बनाने के लिए उसमें विभिन्न वस्तुएँ मिलाई जाती थीं। इस ऋतु में स्त्रियाँ पैरों पर लाक्षारस लगाती थीं।[53] स्तनों पर चन्दन का लेप करतीं तथा इन पर श्वेत हार धारण करतीं।[54]

वर्षा–ऋतु में चन्दन में विशेषरूप से कालागुरू मिलाया जाता था।[55] नीप का पराग भी अंगराग बन जाता था।[56] इन दिनों नई केसर, केतकी और कदम्ब के नये फूलों की मालायें गूंथकर स्त्रियाँ अपने जूड़ों में बाँधती थीं। कुंकुम के फूलों के मनचाहे ढंग से बनाए हुए कर्णफूल अपने कानों में पहनती थीं। स्त्रियाँ अंगोंपर अगर मिला चन्दन का लेप करके बालों में महकते हुए फूलों के गुच्छों को खोंसकर बादलों की गड़गड़ाहट सुनकर अपने शयन–कक्षों में पहुँच जाती थीं।[57] वर्षा काल में प्रेमिका के लिए जूही की नई–नई कलियाँ तथा मालती और मौलसरी के फूलों से माला गूँथी जाती थीं तथा नये खिले कदम्ब के फूलों से कर्णफूल बनाए जाते थे।[58]

शरद्–ऋतु में मालती खिलती थी। नई मालती के सुन्दर फूल दान्तों की चमक से खिल उठने वाली स्त्रियों की मुसकराहट को लजा देते थे।[59] स्त्रियाँ अपनी काली, घनी घुँघराली लटों में नये मालती के फूल गूँथती थीं और कानों में नीले कमल के कुण्डल पहनती थीं। स्तनों पर चन्दन का लेप करती थीं तथा मोती का हार पहनती थीं।[60]

हेमन्त ऋतु में स्त्रियाँ शरीर पर चन्दन लगाती थींय कपोलों पर पत्रलेखा चित्रित करती थीं तथा अपने मुख पर कमल जैसे नाना प्रकार के बेलबूटे बनाती थीं। पत्रलेखा–चित्रण स्त्रियों का नित्य का प्रतिकर्म था। वे काला अगुरू का धूप देकर अपने बालों को सुवासित करती थीं।[61]

शिशिर ऋतु में जब शीत अधिक होता था, उस समय स्त्रियाँ फूलों का आसव पीकर कमल जैसे अपने मुख को सुवासित करती थींय पान खाकर, इत्रफुलेल लगाकर और मालायें पहनकर, अगरू की गन्ध से महकते अपने शय्या घर में बड़े चाव से जाती थीं।[62] स्त्रियाँ स्तनों पर केसर का लेप करती थीं।[63]

वसन्त ऋतु में स्त्रियाँ केसर में रंगी महीन कपड़े की चोली तथा कुसुम के लाल फूलों से रंगी रेशमी साड़ी ख्पहनाती, थीं।[64] कानों में लटके हुए सजीले कनेर के फूल बड़े सुहावने दिखाई पड़ते थे और उनकी चंचल, काली, घुँघराली लटों में अशोक के फूल और नव मल्लिका की खिली हुई कलियाँ लगी होती थीं।[65] सुनहरे कमल के समान सुहावने और बेलबूटे चीते हुए स्त्रियों के मुखों पर फैली हुई पसीने की बूंदें ऐसी दिखाई पड़ती थीं मानो अनेक प्रकार के रत्नों के बीच बहुत से मोती जड़ दिए गए हों।[66] इन दिनों स्त्रियाँ प्रियंगु, कालीयक और केसर के घोल में कस्तूरी मिलाकर अपने स्तनों पर चन्दन का लेप करती थीं।[67] तथा अपने मोटे वस्त्र उतार कर महावर से रंगे हुए और कालागुरू के धुँए से सुगन्धित किए हुए महीन कपड़े पहनती थीं।[68]

विवाह के अवसर पर प्रसाधन– ऋतु–प्रसाधनों की अपेक्षा विवाह के अवसर पर वधू का विशेषरूप से प्रसाधन किया जाता था। सुहागिन स्त्रियों ने पार्वती का प्रसाधन इसी प्रकार किया था। पहले उनके शरीर पर मले हुए तैल को लोध्र की बुकनी से सुखाया और कुछ–कुछ गीला सुगन्धित लेप लेकर उनका शरीर रंगा।[69] मंगल स्नान के पश्चात अगर–चन्दन के धुएँ से उनके बाल सुखाकर बालों में फूल गूँथे और फिर दूब में पिरोई हुई पीले महुए के फूलों की माला उनके जूड़े में लपेटी।[70] किसी ने उजले अगर से बनाया हुआ अंगराग उनके शरीर पर मला और फिर अत्यन्त लाल गोरोचन से उनका शरीर चीता[71] तथा उनके चरणों में महावर लगाई गयी।[72] उनकी आँखों में अंजन लगाया गया[73] तथा उनकी माता ने उनके माथे पर तिलक लगाया।[74]

सैरन्ध्री एवं प्रसाधक– प्रसाधन अथवा श्रृंगार करना एक कला समझी जाती थी। महाभारत में इस कार्य में कुशल स्त्री के लिए सैरन्ध्री नाम दिया है।[75] अमरकोश में इसका नाम सैरन्ध्री–शिल्पकारिका दिया गया है।[76] कादम्बरी में पत्रलेखा, तरलिका आदि इसी प्रसाधन कार्य तथा अन्य श्रृंगार कार्य के लिए पात्र रूप में वर्णित है। वात्स्यायन कामसूत्र में शय्या के पास ताम्बूल के साथ सिकथकरण्डिका प्रसाधन की पेटी भी रखने का उल्लेख है।[77] उबटन–मालिश–केश–मर्दन कला (उत्सादने संवाहने केशमर्दने च कौशलम) की गणना कामसूत्र में 64 कलाओं के अन्तर्गत की गयी है।[78] संवाहन कला का उल्लेख मृच्छकटिक में भी उपलब्ध होता है।

इस प्रकार गुप्तकालीन साहित्य में प्रसाधन कला, प्रसाधन विधि और प्रसाधन सम्पन्न करने वाले प्रसाधकों, प्रसाधिकाओं, प्रसाधन–पेटिका तक का उल्लेख हुआ है। मुख–प्रसाधन चेहरे पर पत्रलेख, विशेषक, भक्ति, अधररंजन आदि को कहते थे और वेणी–प्रसाधन केशकलाप संपन्न करने को। वेणी–प्रसाधन के अनेक दृश्य मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित द्वारचौखट के अनेक खाणों में

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- III, Issues-41, YEAR- July-Sept. 2026

प्रदर्शित है। मथुरा की कला में प्रसाधिका और प्रसाधन पेटिका के चित्र पत्थर में उत्कीर्ण हैं। इन सब में महत्त्व मूर्तन भारतकलाभवन में सुरक्षित एक वेदिका–स्तंभ पर उत्कीर्ण प्रसाधिका का है जो गजरों आदि से भरी अपनी पेटिका लिये शालीन खड़ी है।

जिस प्रकार राजकुलों की स्त्रियों का श्रृंगार करने के लिए सैरन्ध्री होती थीं। उसी प्रकार राजाओं का श्रृंगार करते के लिए प्रसाधक होते थे। वे राजाओं के केश को धूपित करते थे। राजा के सिर में मोती की माला पहनाते थे, उसमें फूल गूँथते थे और सबके ऊपर पदमराग–मणि बाँध देते थे। चन्दन और कस्तूरी से बने अंगराग लगाकर उस पर गोरोचन से चित्र बना देते थे।[79]

दर्पण– दर्पण का स्वाभाविक ही प्रसाधन में अपना विशिष्ट स्थान था। यह कह सकना तो कठिन है कि दर्पण किस धातु का बनता था पर एक संदर्भ से ज्ञात होता है कि वह या तो कांच का बनता था या किसी ऐसे पदार्थ का जिसे पालिश द्वारा कांच की तरह चमका देते थे। कालिदास ने श्भाप से दर्पण के दूषित हो जानेश की बात कही है।[80] वैसे स्वर्ण के दर्पण का उल्लेख भी हुआ है।[81] हो सकता है कि वह सोने के चौखटे वाला दर्पण हो। उल्लेखनीय है कि 'पेरिप्लस'[82] में भारत से कांच के आयात का उल्लेख हुआ है और प्रायः तभी से इतिहासकार प्लिनी[83] ने स्फटिक–चूर्ण से बने भारती कांच को सबसे उत्तम माना है। प्रसाधन के पश्चात दर्पण में अपना रूप देखना शुभदायक माना जाता था।[84]

फुट नोट्स (अंत टिप्पणियाँ)/सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शाकुन्तल., 4, 5य 6, 18य 1, 19
2. कामसूत्र, 1, 2, 17
3. कामसूत्र, 1, 4, 5
4. वही, 1, 4, 6
5. कामसूत्र, 4, 1, 24
6. कुमार., 7, 22
7. उत्तरमेघ, 2
8. कुमार., 7, 57
9. वही, 7, 58
10. वही, 7, 59
11. कामसूत्र, 1, 4, 5
12. विद्यालंकार, अग्निदेव, प्राचीन भारत के प्रसाधन, पृ. 100
13. कामसूत्र, 1, 3, 15
14. कुमार., 7, 9
15. कामसूत्र, 1, 4, 5
16. वही
17. वही, 1, 4, 6
18. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, प्रा. भा. के कलात्मक विनोद, पृ. 31–32
19. वही, पृ. 32
20. वही, पृ. 33
21. ऋतु., 1, 2–5
22. 'प्राचीन भारत के प्रसाधन', पृ. 194
23. कुमार., 1, 60
24. रघु., 6, 91
25. ऋतु., 2, 21
26. ऋतु., 4, 5
27. वही, 1, 4
28. शाकुन्तल., अंक 7य उत्तरमेघ, 30, 34
29. रघु., 4, 54
30. उत्तरमेघ, 24
31. वही, 46
32. ऋतु., 2, 18
33. हर्षचरित, एक सांस्कृतिक अध्ययन', पृ. 20
34. रघु., 3, 28य 11, 1
35. भारत कला–भवन, काशी और पटना संग्रहालय में संरक्षित
36. अल्तेकर, 'गुप्तकालीन मुद्राएँ', पृ. 145
37. वही, पृ. 137
38. वही, पृ. 139
39. वही, पृ. 145
40. मृच्छकटिक, अंक 4
41. ऋतु., 1, 9
42. वही, 4, 5
43. वही, 2, 22
44. ऋतु., 1, 5

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- III, Issues-41, YEAR- July-Sept. 2026

45. नाट्यशास्त्र, 23, 30
46. ऋतु., 5, 12
47. वही, 1, 4
48. वही, 5, 9
49. वही, 6, 5
50. वही, 1, 5
51. कुमार., 5, 34
52. ऋतु., 1, 2
53. वही, 1, 5
54. वही, 1, 6
55. वही, 2, 22
56. रघु., 19, 37
57. ऋतु., 2, 22
58. वही, 2, 25
59. वही, 3, 18
60. वही, 3, 19
61. वही, 4, 5
62. वही, 5, 5
63. वही, 5, 9
64. वही, 6, 5
65. वही, 6, 6
66. वही, 6, 8
67. वही, 6, 13
68. वही, 6, 14
69. कुमार., 7, 9
70. वही, 7, 14
71. वही, 7, 15
72. वही, 7, 19
73. वही, 7, 20
74. वही, 7, 23
75. महाभारत, विराट, 3, 18, 19
76. 'प्रा. भा. के प्रसाधन', पृ. 23
77. कामसूत्र, 1, 4, 4
78. वही, 1, 3, 15
79. रघु., 17, 22–24
80. रघु., 14, 37
81. वही, 17, 26
82. स्कॉफ का अनुवाद, पृ. 45
83. वही, 37, 20
84. इण्डिया., पृ. 208

*****